21 कला शिक्षा, कला शिक्षक एवं कारीगर

o'yh Ld'y ¼d-,Q-vkb-½] cxykj dk Hkke.k

नीरजा राघवन

बंगलौर के वैली स्कूल (कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया) में कारीगरों को आमंत्रित कर उनसे बच्चों को प्रशिक्षित करवाया जाता है जबकि अधिकांश स्कूलों में ऐसा नहीं होता है। इस स्कूल में ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि कला शिक्षकों के साथ–साथ देश के विभिन्न भागों में कार्यरत कारीगरों और दस्तकारों द्वारा बच्चों को (यहाँ तक कि बच्चों के माता–पिता या जिस किसी को भी इसमें रुचि हो उन्हें भी) पारम्परिक कला की शिक्षा दी जा सके। कई कारीगरों को प्रशिक्षक के रूप में काम पर रखा गया है। वे स्कूल में संकाय के सदस्य के रूप में काम कर रहे हैं। कुछ अन्य कारीगरों को दो महीने में एक बार उनके ग्रामीण इलाकों से आमंत्रित किया जाता है और यह व्यवस्था वर्तमान में चल रहे आउटरीच कार्यक्रम के तहत की गई है। इसके पीछे इरादा यह है विद्यार्थी उन्हें काम करते हुए देखकर सीख सकें और उनके साथ काम कर सकें। भले ही उनकी भाषा और संस्कृति में अन्तर है, तो भी इस स्कूल ने यह बात जान ली है कि कारीगरों के हाथ जो विशुद्ध चित्रमय भाषा बोलते हैं वह शिक्षार्थियों के बीच बातचीत को सम्भव बना देती है। लर्निंग कर्व ने इस अनूठी कार्यप्रणाली को समझने के लिए संकाय के कुछ सदस्यों से बातचीत की।

वैली स्कूल किस प्रकार के कला शिक्षा कार्यक्रम की पेशकश करता है?

वैली स्कूल के निदेशक *डॉ. सतीश इनामदार* कहते हैं–"हमारे स्कूल में पाँच से चौदह साल के बच्चों के लिए सब कुछ अनिवार्य है। बालक को नृत्य सीखना पड़ता है तो बालिका को नाटक....सबको सब कुछ करना पड़ता है, क्योंकि बाद में भले ही बालक या बालिका कुछ भी करें, पर मेरे हिसाब से, स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ हम उन्हें हर सम्भव जानकारी दे सकते हैं। इसके अलावा हम और तो कुछ नहीं कर सकते। अन्ततः यह बात तो बच्चे पर है कि वह प्रकृति के साथ सम्बन्ध विकसित करे और तभी कला की सारी उत्कृष्टता उभरेगी। जूनियर स्कूल से मिडिल स्कूल (कक्षा I से VIII) तक के बच्चे अपने कुल समय का पाँचवाँ भाग कला ग्राम में बिताते हैं। सीनियर बच्चे परीक्षा के लिए भी कला का अध्ययन करते हैं। कई बच्चे पेन्टिंग और संगीत आदि में भी भाग लेते हैं। उन्हें आधे दिन का समय मिलता है। इसे हम 'सहभागितापूर्ण कला' और 'परीक्षा कला' कहते हैं। सीनियर बच्चों को दोनों का मौका मिलता है। कृष्णमूर्ति ने सहभागितापूर्ण चेतना के बारे में बात की है। हम इस तरह की कला में अधिक रुचि लेते हैं, चाहे वह लोक गायन हो या साथ–साथ नृत्य करना हो। मेरा अनुभव तो यह है कि संवाद करने के लिए बौद्धिक रूप से लोगों को साथ लाना बहुत मुश्किल है, लेकिन नृत्य या गायन आदि में लोग साथ आ जाते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम कला ग्राम को समृद्ध करते रहे हैं। इस तरह से जो संस्था बनी है, वह बहुत दुर्लभ प्रकार की है। यहाँ पन्द्रह लोग काम कर रहे हैं और हमने रंगगृह और खुली जगह बनाई है। यहाँ एक रंगभूमि भी है।"

शिक्षा के उद्देश्य में यह सब कहाँ तक उपयुक्त बैठता है?

"मेरे अनुसार संवेदनशीलता के लिए नींव तैयार करना हर स्कूल का मूल उद्देश्य है। इसके लिए हम सभी प्रयास कर रहे हैं। हम बाहर से कारीगरों को बुलाते हैं। उनकी कला अत्यन्त विविध है। सौभाग्य की बात है कि भारत में इतनी विविधताएँ हैं कि जो संसार में और कहीं नहीं हैं। लोग कम से कम चीजों के साथ काम करते हैं। अतः सीखने के लिए बच्चों को एक समग्र दृष्टिकोण मिलता है।"

क्या कलाकारों और कारीगरों को इस प्रकार से काम पर रखना स्कूल को महँगा पड़ता है?

"स्कूल के लिए यह काफी बड़ी व्यवस्था है। हम भाग्यशाली हैं कि कई लोगों ने इसमें रुचि दिखाई है। किसी भी चीज को एक संस्कृति बनने में वक्त तो लगता है। पर यह उतना महँगा भी नहीं है जितना कि लोग सोचते हैं—पर हमारी प्राथमिकताएँ बेहद सख्त हैं और वे गणित, कम्प्यूटर, विज्ञान आदि से जुड़ी हुई हैं। हम उतना ही समय कला और प्रकृति और खेलकूद को क्यों नहीं दे सकते जितना इन विषयों को देते हैं? क्योंकि तभी तो बच्चे अच्छी तरह से सीख पाएँगे। अगर हम उन्हें चारदीवारी में बन्द करके रख देंगे तो स्कूल बाड़े में बन्द पशुशाला बनकर रह जाएँगे। आज दुनिया में इतनी अराजकता इसीलिए है क्योंकि शिक्षा ने गलत दिशा ले ली है। हम चाहें तो उसे सही दिशा दे सकते हैं लेकिन हमारी प्राथमिकताएँ गलत हैं क्योंकि वे पोषण के लिए नहीं बल्कि परमाणु हथियारों के लिए हैं। ऐसा नहीं है कि दुनिया में संसाधन नहीं हैं, लेकिन हम उन्हें गलत तरीके से खर्च करते हैं।"

कला ग्राम की शिक्षिका एवं कई आउटरीच कार्यक्रमों की समन्वयक *नलिनी जयराम* कहती हैं कि उनके कला—कार्यक्रम शहरी और ग्रामीण अन्तर को पाटने का एक तरीका भी हैं। वे कहती हैं कि कला सांस्कृतिक अवरोधों के परे पुल बनाती है और हम एक—दूसरे को देखकर व अपने आप चीजों को खोजकर नई बातें सीख लेते हैं। एक रचनात्मक दिमाग हमेशा खुला रहता है। "आपको बड़ी—बड़ी मूलभूत सुविधाओं की जरूरत नहीं है, जरूरत है तो एक सही दृष्टिकोण, परिप्रेक्ष्य और चीजों को गहराई से देखने की। बंगलौर की प्रक्रिया नामक संस्था ने भी बुनकरों के साथ यह काम शुरू किया है। 80 बच्चे रोज बुनाई का काम करते हैं। उन्होंने एक स्थानीय कुम्हार को काम पर रखा है; उनके शिक्षकों ने आकर बुनियादी बढ़ईगीरी सीखी, अब उन्होंने एक बढ़ई को भी काम पर रखा है....इस प्रकार वहाँ यह प्रक्रिया चल रही है।"

"अगर प्री स्कूल से ही अधिगम के अन्य रूपों जैसे पढ़ना, लिखना और गणित की संक्रियाओं पर बहुत ज्यादा ध्यान देने की बजाए, बच्चों को धरती, प्रकृति और कारीगरों के साथ रखा जाए तो इस प्रकार का अधिगम सहज अधिगम का पोषण करने में दूरगामी परिणाम देगा।"

"आजकल हम बच्चों की आवश्यकता से अधिक मदद करते हैं, उनकी पूरी शिक्षा शिक्षक—केन्द्रित है; इस वजह से सीखने, खोजने और अपने हाथों से चीजें बनाने की उत्कण्ठा लुप्त हो चुकी है। आज हम उत्पादों से संचालित हैं, हम मॉल में जाकर चीजों की प्रशंसा करते हैं, उन्हें खरीदते हैं, पर हम यह नहीं जानते कि ये चीजें कहाँ से आती हैं, इनमें कौन—कौन सी सामग्री लगती है। मुझे लगता है कि नए स्कूलों को इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।"

"संगीत, नृत्य, कला, थियेटर —ये सभी एक ही क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। ये हमारे स्कूल के मजबूत अंग बन गए हैं। लोग कला ग्राम को हमारे स्कूल की पहचान मानते हैं। कला ग्राम के हमारे आउटरीच कार्यक्रम दुनिया में कहीं भी किसी भी व्यक्ति के लिए खुले हैं; हम सामग्री के लिए मामूली सा शुल्क लेते हैं ताकि जिनके पास ये सुविधाएँ या संरचनाएँ नहीं हैं वे इन कार्यक्रमों में भाग ले सकें।"

नलिनी आगे बताती हैं कि, "विशेष योग्यता वाले बच्चों के लिए कला की शिक्षा किस प्रकार से लाभकारी हो सकती है, हमारे कला कार्यक्रम में डिस्लेक्सिया और श्रवण दुर्बलता से ग्रस्त कुछ बच्चे थे और आज उनमें से प्रत्येक को

नौकरी मिल गई है। एक छात्र को फाइन आर्ट्स कॉलेज में दाखिला मिल गया है। एक और छात्रा जो डिस्लेक्सिक थी, वह विशेष स्कूल में शिक्षिका बन गई है और वह वहाँ कला और क्राफ्ट सिखाती है तथा साथ ही डाउन सिंड्रोम से पीड़ित दो बच्चों का ध्यान भी रख रही है।

एक छात्रा श्रवण दुर्बलता से ग्रस्त थी, वह कला और क्राफ्ट में बेहद रुचि रखती थी। उसके अपने दृढ़ निश्चय एवं समझ ने आज उसे कला के एक कॉलेज में जगह दिला दी है। जब असम का एक बुनकर करघे पर पैटर्न बनाना सिखा रहा होता था तब वह बड़े ध्यान से उसे देख रही होती थी। चाहे कोई 'सामान्य' हो या उसमें 'सीखने की कठिनाइयाँ' हों, लेकिन अगर उसमें रचना करने और सीखने की लगन हो तो वह अत्यन्त क्षमतावान बन सकता है। यहाँ तक कि जो बुनकर यहाँ थी वह भी उसी बालिका को ढूँढ़ती थी और पूछती थी—वह बच्ची आज कहाँ है?

वह बहुत अच्छी तरह से सीखती है !

एक और बालक था जिसने आठ सालों में 10 स्कूल बदले थे और उस पर "अति डिस्लेक्सिक—यह तो तीन—चार अक्षरों से ज्यादा नहीं पढ़ सकता" का ठप्पा लग चुका था—वह बालक यहाँ तीन सालों तक रहा और अब उसने मैसूर कला कॉलेज में प्रवेश लिया है। इन बच्चों के माता—पिता/समाज ने इन्हें 'नालायक' कहा किन्तु यहाँ इन बच्चों ने आत्म—सम्मान पाया, इन्हें एक ऐसी जगह मिली जहाँ उनमें यह एहसास जागा कि वे भी अनूठे थे और कुछ कर सकते थे। जरा से प्रशिक्षण से उनका बहुत विकास हुआ।"

क्या यहाँ कारीगर भी एक—दूसरे से सीखते हैं?

"एक बुनकर यहाँ आई थी जो ब्रह्मपुत्र के एक द्वीप पर रहती है—माझुली द्वीप—जो एक धरोहर स्थल है। वह एक उस्ताद और राष्ट्रीय सम्मान विजेता है। वह हमारे यहाँ के करूर (तमिलनाडु) वासी बुनकर से मिली। इसके पीछे विचार यह था कि मौजूदा बुनकर विभाग को समृद्ध किया जाए। उन्होंने एक—दूसरे से बहुत कुछ सीखा....उन्होंने दोनों प्रकार की बुनाई की परम्परा के बीच की सामान्य बातों का पता लगाया।"

देश के विभिन्न भागों के कारीगर एक—दूसरे से कैसे बातचीत करते हैं?

"हाथों की भाषा बातचीत की दूसरी भाषा है। एक बुनकर की भाषा तमिल थी तो दूसरे की हिन्दी/असमिया! पर दोनों एक—दूसरे को अच्छी तरह समझ पा रहे थे। जैसे ही उसने कहा—इसे ऐसे खींचना है, तो वह एकदम से समझ गया। कोई कठिनाई नहीं हुई। उसने जवाब दिया कि मैं ऐसे करता हूँ, हम यहाँ ऐसे करते हैं।"

क्या कभी ऐसा हुआ है कि जो कारीगर यहाँ आते हैं वे अपनी पुरानी जीवन—शैली की कमी महसूस करते हों? जब वे यहाँ संकाय के सदस्य के रूप में काम करने लगते हैं तो क्या वे कभी वापस अपनी पुरानी दुनिया में लौटने की बात करते हैं?

"जो कारीगर यहाँ आते हैं वे आधे शहरी बन चुके होते हैं, हमारे स्कूल में आने के पहले ही वे अपना गाँव छोड़ चुके होते हैं। जैसे कि हमारा बढ़ई पहले तमिलनाडु के एक गाँव में काम करता था और बाद में फर्नीचर बनाने के लिए कर्नाटक में आ गया। हमें उसके बारे में पता लगा तो हमने सोचा कि वह काष्ठ–कला के कारीगर के रूप में हमारे साथ काम कर सकता है और हम उससे केवल फर्नीचर बनाने को नहीं वरन अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम के रूप में लकड़ी पर काम करने के लिए कहेंगे। अब वह धीरे–धीरे लकड़ी के आकार, संरचना और कार्यात्मक टुकड़े बनाने के स्थान पर लकड़ी के विभिन्न माध्यमों के साथ काम करता है। अब उसका पूरा दृष्टिकोण बदल गया है। इस प्रकार जब वे उपयोगितावादी दृष्टि से दूर हट जाते हैं और तब कला और शिल्प का मिलन होता है। अब तो अगर उससे किसी रखरखाव या मरम्मत का काम करने को कहा जाए तो उसे शिकायत होती है, केवल उपयोगितावादी प्रयोजनों के लिए काम करना उसे नहीं सुहाता! वह कहता है, मुझे लकड़ी का कुन्दा दो, क्या मैं इस पर नक्काशी कर सकता हूँ? जैसे ही आप उससे कहें कि चलो, हम लकड़ी के कुन्दे पर काम करें, तो वह झट से उसके लिए समय निकाल लेगा। उस माध्यम के साथ अब उसकी निजी बातचीत होती है, उसके लिए लकड़ी जीवन्त हो जाती है, उसे कोई खरीदेगा या नहीं यह बात अब कोई मायने नहीं रखती। उस चीज को बनाना है–यह बात मुख्य हो जाती है।

'यह विकास की यात्रा है; मैं अनजानी दिशा में आगे बढ़ रहा हूँ.....यह मुझे कहाँ ले जाएगी, पता नहीं। सच्ची रचनात्मकता अपरिचित क्षेत्रों में ही होती है।'

इस क्षेत्र ने कारीगरों को इस यात्रा में साथ–साथ चलने दिया है। हमारी कोशिश भी यही है। हमारा उद्देश्य कारीगरों को मात्र प्रशिक्षक की तरह रखना नहीं, बल्कि यह देखना है कि क्या सभी का विकास हो सकता है? इस क्षेत्र में आने वाले सभी लोगों का विकास....सिर्फ विद्यार्थियों का नहीं। जो लोग भी इस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं क्या उन्हें महसूस होना चाहिए कि कुछ बनाना है और क्या वे अपनी स्वतंत्र

सोच और प्रयोगात्मक होने के साथ–साथ चुपचाप अपनी खोज में लगे रह सकते हैं।

बच्चे चीजों को छूकर यह समझने लगते हैं कि वे 'जानते हैं', 'ओह, मैं जानता हूँ, मैं इसे बना सकता हूँ।' लेकिन जब वे उसे बनाने की कोशिश करते हैं तब उन्हें पता चलता है कि यह काम कठिन है और इससे उनमें विनम्रता आती है। पर यह कहना एक आदत बन गई है कि 'मैं जानता हूँ' भले ही आप सिर्फ एक या दो चीजें ही जानते हों। शहरी समुदायों में आज यह एक बीमारी बन चुकी है, सिर्फ इसलिए क्योंकि आप गूगल खोज करके जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन आप गूगल खोज करके कला नहीं रच सकते। भीतर से अभिव्यक्ति के वास्तविक अनुभव और अन्दरूनी गहरी खामोशी के बिना कला की रचना नहीं हो सकती।"

कला ग्राम में बुनाई और करघे के पीछे की कहानी के बारे में नलिनी कहती हैं, "हम एक साधारण करघा बना सकते हैं, देखिए, यह जो यहाँ रखा है–इसे शान्तिनिकेतन से लाया गया है। करघा बनाना स्वयं में एक कला है। इस पर काम करने के लिए सटीकता चाहिए। असम से जो बुनकर आई थी उसने बाँस से बना एक स्वदेशी करघा लगाया। यह परोक्ष रूप से पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण का एक तरीका था। प्राचीन ज्ञान को कैसे संरक्षित करना है,

धातु की ढलाई–डोगरा

यह हमारे सरोकारों में से एक है। इसलिए हमने असम के बुनकर को बुलवाया। हम इस तरह का एक करघा चाहते थे, अत: भारी खर्चे के बावजूद हमने उसे आमंत्रित किया। ”

“ऐसे लोगों की उपस्थिति मात्र से बच्चों को मानो कुछ हो जाता है....कोई किताब नहीं, कुछ नहीं, बस आप देखते हैं कि यहाँ कुछ हो रहा है तो वहाँ कुछ हो रहा है....। कुछ दिन पहले बच्चों ने आठ से दस घण्टे तक बुनाई का काम किया और एक बार भी यह नहीं कहा कि वे ऊब रहे हैं। तो जो दिमाग किताबों से इतना बेचैन हो उठता है, जिसकी ध्यान केन्द्रित करने की अवधि इतनी कम है–उसे कला के इस रूप से अनुशासित किया जा सकता है। यहाँ सब कुछ मनोरंजक नहीं है, प्रोत्साहक नहीं है...जब तक वह 100 मीटर सूत बना नहीं लेता, पूरी प्रक्रिया शुरू नहीं हो सकती। इसलिए यह तत्काल सन्तुष्ट होने के वर्तमान परिदृश्य से बहुत अलग है कि ,'मैं बहुत ऊब रहा हूँ, अब मैं और क्या करूँ?”

जब आप कारीगरों से बातचीत करते हैं तब क्या भाषा की समस्या सामने नहीं आती?

कुम्हारी के शिक्षक *चन्दन* इसके जवाब में कहते हैं, “नहीं, जब हाथ और दिमाग काम कर रहे हों तो भाषा की जरूरत ही नहीं पड़ती। ओड़िशा के कारीगर हिन्दी जानते हैं। हमारे बच्चों को उनके साथ काम करने में बड़ा आनन्द आता है –बोलने की जरूरत ही नहीं पड़ती। काम करते वक्त डोगरा कारीगर गाते हैं। एक तरफ आग जल रही होती है, दूसरी तरफ वे मोम पिघला रहे होते हैं और काम चलता रहता है, बच्चे आनन्द लेते हैं.....कारीगर समझाते रहते हैं...।”

मुख्यधारा के स्कूलों में कला की शिक्षा तो दी जाती है लेकिन कारीगरों के साथ कोई सम्पर्क नहीं होता–इस बारे में आपका क्या विचार है?

कला शिक्षिका *श्वेतल* का कहना है, “मुझे लगता है कि यह एक बहुत बड़ी कमी है। कला को कला विशेषज्ञों द्वारा नहीं सिखाया जा सकता क्योंकि इसका अनुभव करना आवश्यक है। यह मेरा विश्वास है। मैं इसे सत्यापित नहीं कर सकती और जो कला भीतर से उत्पन्न होती है उससे वे किसी चीज का उत्पादन नहीं करते। यह तो घर में सीखी हुई कला है जिसका उपयोग वे अपने कपड़ों की

राजस्थान के फड़ चित्रकार

पट चित्रकार

सजावट के लिए करते थे ताकि अपने काम को पेश करने के तरीके में कोई दिखावा न हो। इसके लिए वे अपनी क्षमता का पूरा–पूरा उपयोग करते हैं और यह बात सिखाई नहीं जा सकती। इसे बस महसूस किया जाना चाहिए। जब ये लोग आकर काम करते हैं और बातचीत करते हैं तो जो कुछ ये सिखाते हैं वह मैं (जिसने किताबों से सीखा है) नहीं सिखा सकती। एक पेशेवर के रूप में, अब कई वर्षों के बाद, मुझे महसूस होता है कि जब मैं किसी विशेषज्ञ दस्तकार से कोई काम सीखती हूँ, तब कहीं जाकर मैं उस बारे में थोड़ा बहुत समझना शुरू करने लगती हूँ।"

पत्थर में एक कहानी

स्कूल के क्षेत्रीय चित्रकार शिविर के दौरान, किसी कला कॉलेज का एक विद्यार्थी आया और उसने कुछ करने की इच्छा जाहिर की। उसने यहाँ–वहाँ कुछ पत्थर पड़े देखे और उन पर काम करके यह बनाया। "एक कलाकार का मस्तिष्क समझ सकता है, मन में विचार बैठा सकता है और आसपास पड़ी हुई चीजों से नई चीजें बना सकता है। वह इन पचड़ों में नहीं पड़ता कि मुझे यह चाहिए और वह चाहिए। तो ऐसा ही एक उदाहरण यह है। वह यूँ ही आसपास चल रहा था, और तो और, वह तो शिविर का प्रतिभागी भी नहीं था, बस उसने निर्माण कार्य के लिए रखे हुए इन पत्थरों को यहाँ देखा....उसने इन पत्थरों पर एक्रिलिक रंगों का इस्तेमाल किया है। यह लम्बे समय तक नहीं टिकेगा, पर उससे क्या फर्क पड़ता है?" नलिनी पूछती हैं। "उसने चीजों के साथ यह कहानी बनाई। अब देखिए न, गाँव के लोग शहरों का निर्माण करने जा रहे हैं, नौकरी की तलाश में कंक्रीट के जंगलों की ओर जा रहे हैं, और शहर के लोग प्रकृति की ओर जा रहे हैं। देखिए? ग्रामीण लोग रोजगार की तलाश में भीड़ में, बोरियों पर बैठकर, भवन निर्माण करने चले जा रहे हैं।"

मैं यह सोचते हुए लौटी कि शहरवासियों के गाँव में और गाँव वालों के शहर में आने (जैसा कि पत्थर की पेन्टिंग में दिखाया गया है) को इस तरह की पहल से बदला जा सकता है, जिसमें शहरी कलाकार और ग्रामीण कारीगर मिलकर काम करते हैं।

नीरजा राघवन *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के विश्वविद्यालय संसाधन केन्द्र में प्रोफेसर हैं। वे अकादमिक और शिक्षाशास्त्र (एकेडेमिक्स एण्ड पेडॉगॉजी) अनुभाग में कार्यरत हैं। इसके अलावा वे विज्ञान शिक्षक शिक्षा, पाठ्यक्रम विकास तथा शोध से जुड़ी हुई हैं। उनसे neeraja@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।*
अनुवादः *नलिनी रावल*